भारत की जल विरासतें

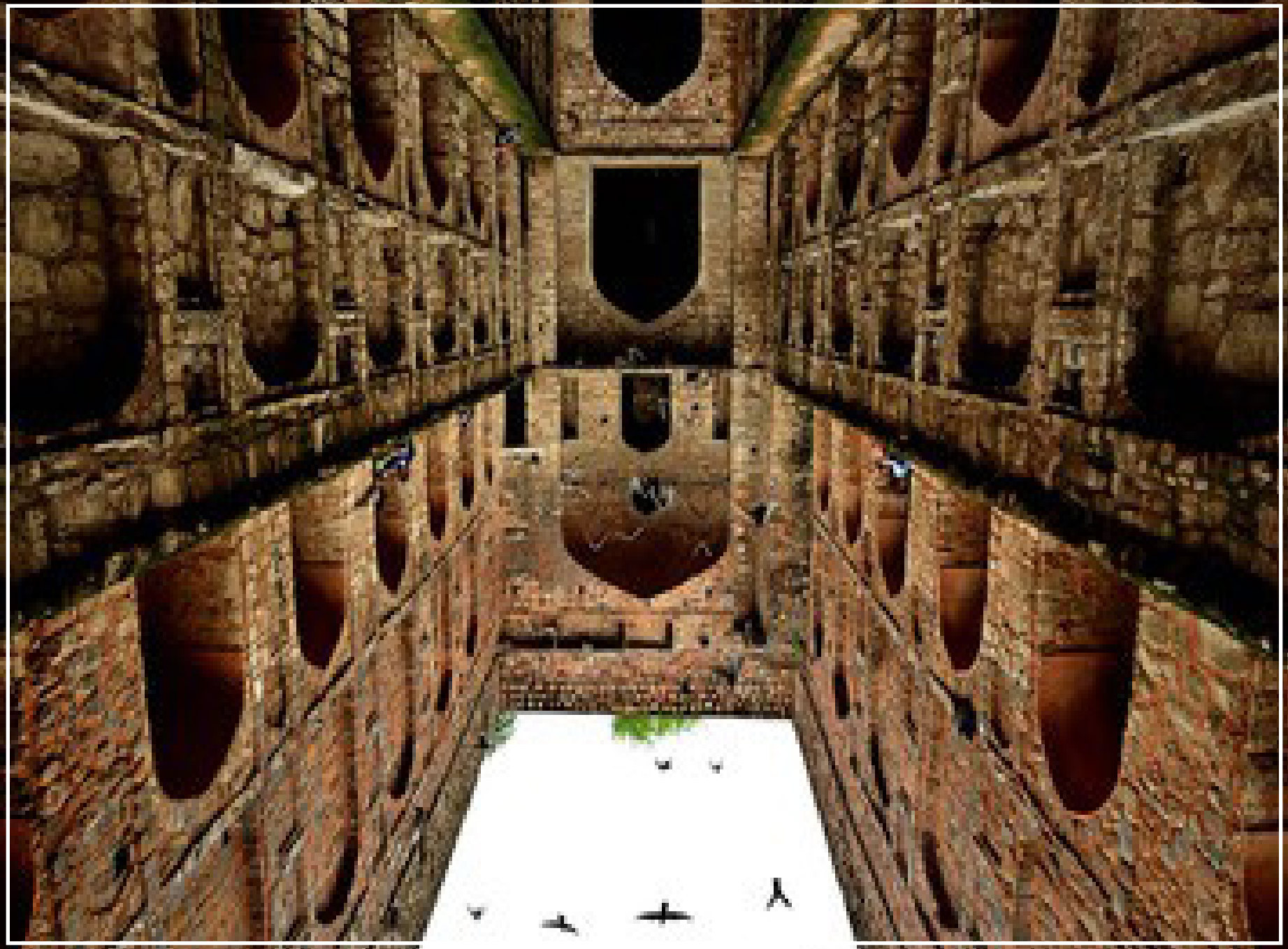

भारत के विभिन्न हिस्सों में विभिन्न प्रकार के पारम्परिक जल संरक्षण संरचनाओं की सूची

क्रमांक	जैव भौगोलिक क्षेत्र	संरचना
01	परा हिमालियन क्षेत्र	ज़िंग
02	पश्चिमी हिमालय	कुल, नौला, कुह्ल, खत्री
03	पूर्व हिमालय	अपतानी
04	उत्तर-पूर्वी पर्वत श्रृखंला	जाबो, बाँस बूँद सिंचाई
05	ब्रम्हपुत्र घाटी	डोंग, डुंग या जम्पोई
06	गंगा-सिंधु मैदान	आहर पाईन, जलप्लावन, दिघी, बावली
07	थार रेगिस्तान	कुण्डा / कुण्डी, कुई / बेरी, बावरी, बेर, झालर, नदी, टंका, खादिन, ताव/बावरी/बावली/ बावडी, विरदास, जोहड
08	मध्यवर्ती उच्च भूमि	तालाब / बंधिस, साझा कुआं, जोहड, नाडा/बांध, पत, रापट, चंदेला तालाब, बुन्देला तालाब
09	पूर्वी उच्च भूमि	काटा/मुण्डा/बंधा
10	दक्कन का पठार	चेरुबु, कोहली, भंडारम, फड, रामटेक, केरे
11	पश्चिमी घाट	सुरन्गम, एरी,
12	पूर्वी घाट	कोराम्बु
13	पूर्वी तटीय मैदान	घेरो, उरनी,
14	निकोबार	जैकवेल

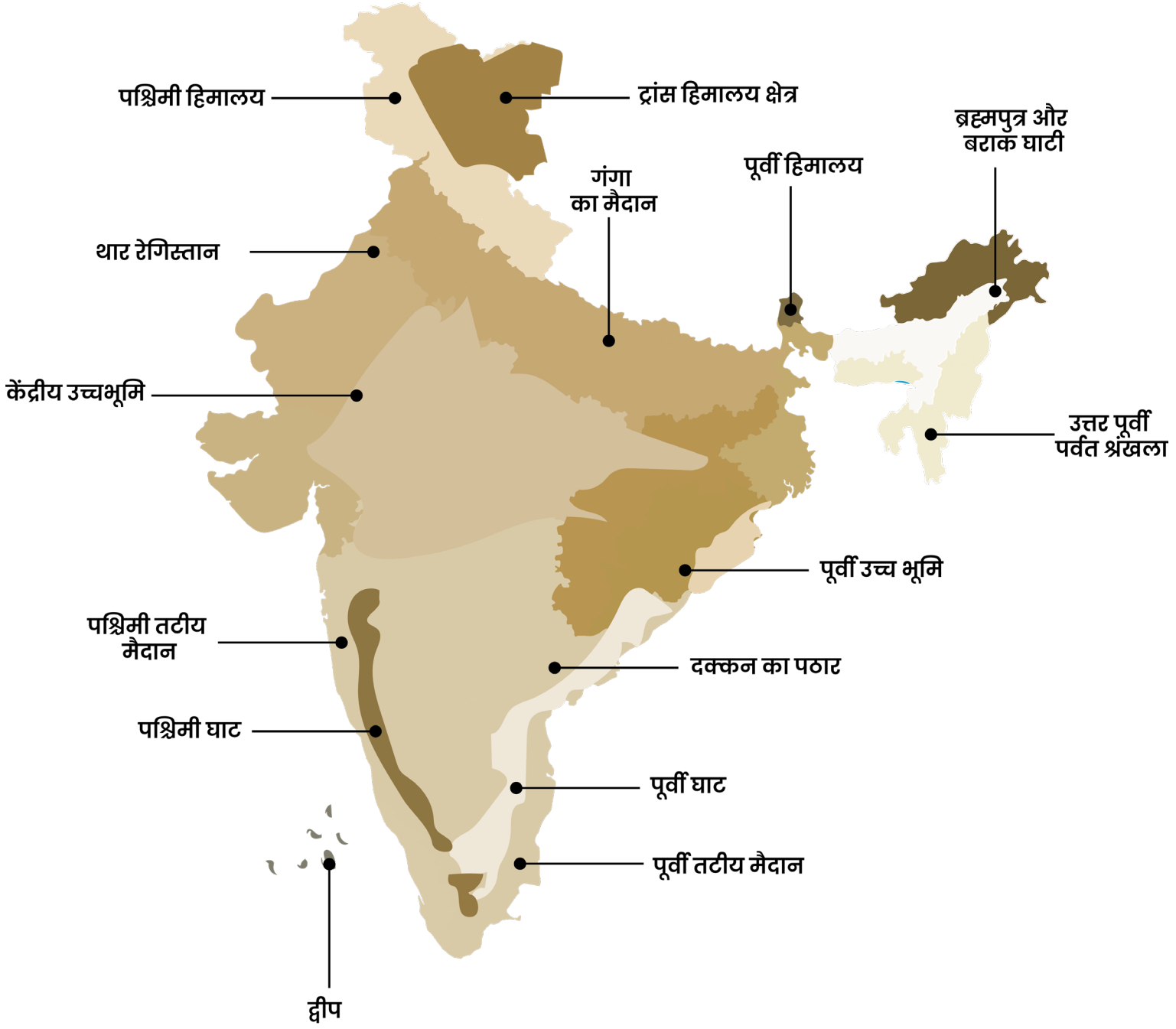
पश्चिमी हिमालय
ट्रांस हिमालय क्षेत्र
ब्रह्मपुत्र और
बराक घाटी
गंगा
का मैदान
पूर्वी हिमालय
थार रेगिस्तान
केंद्रीय उच्चभूमि
उत्तर पूर्वी
पर्वत श्रंखला
पूर्वी उच्च भूमि
पश्चिमी तटीय
मैदान
दक्कन का पठार
पश्चिमी घाट
पूर्वी घाट
पूर्वी तटीय मैदान
द्वीप

हम सबको विरासत में अविरल बहती नदिया, पानी को कोख में समेटे तालाब, झील, पोखर मिले है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि सभ्यताओं के विकास में प्राकृतिक संसाधनों का बहुत बडा योगदान है। हर कालखण्ड में जल संरक्षण, सम्बर्द्धन के लिए विशेष संरचनाओं का निर्माण किया गया, इन संरचनाओं में तत्कालीन शासको के वस्तु का प्रभाव दिखायी देता है। भारत में जल संरक्षण की 40 से अधिक परम्परागत पद्धतियां हमें अपनी जल की विरासत के बारे में बताती है। जिनमें से आज भी कई उपयोगी एवं प्रासंगिक है। जरूरत है इन विरासतों को बचाने एवं संरक्षित करने की। इसी सन्दर्भ में जल जन जोडो अभियान द्वारा भारत की जल विरासतें पुस्तिका का प्रकाशन किया जा रहा है। हमें विश्वास है कि यह पुस्तिका आप सबके लिए उपयोगी साबित होगी।

ज़िंग

परा हिमालय के जैव भौगोलिक क्षेत्र के लद्दाख में जिंग नाम की जल संचयन संरचनाएं होती हैं। ये छोटे तालाब के आकार के संरचनाऐं होती है जिनमें ग्लेशियर से पिघलकर निकलने वाले पानी को इकट्ठा किया जाता था। तालाब में पानी लाने के लिए ग्लैशियर तक चैनल बनायी जाती है जो ग्लेशियर से जिंग में पानी लाता है। जैसे ही ग्लेशियर दिन के दौरान पिघलते है, चैनलों के माध्यम से पानी जिंग में जमा हो जाता है, अगले दिन सुबह जिंग के पानी का आस-पास के समुदाय के द्वारा उपयोग किया जाता है। इन जिंग के देखभाल के चुरपुन नाम से अधिकारी की नियुक्ति भी की जाती थी, जिससे पानी का समान वितरण हो सके।

कुल

कुल एक पानी ले जाने का चैनल होता है, जो पहाड़ी इलाकों में पाए जाते हैं। ये चेनल हिमाचल प्रदेश की स्पीति घाटी में ग्लेशियरों से गांवों तक पानी ले जाते हैं। जम्मू क्षेत्र में भी कुहल नामक समान सिंचाई प्रणाली पाई जाती है। इन प्रणालियों के द्वारा लोगों को पहाडी क्षेत्रों में पीने के पानी की उपलब्धता सुलभ तरीके से हो पाती है।

नौला

नौला पेयजल की उपलब्धता हेतु पत्थरों से निर्मित एक ऐसी संरचना है, जिसमें सबसे नीचे एक वर्ग फुट चौकोर सीढ़ीनुमा क्रमबद्ध पत्थरों की पंक्ति जिसे स्थानीय भाषा में 'पाटा' कहा जाता है, से प्रारम्भ होकर ऊपर की ओर आकार में बढ़ते हुए लगभग 8-10 पाटे होते हैं, सबसे ऊपर का पाटा लगभग एक डेढ़ मीटर चौड़ाई-लम्बाई व कहीं-कहीं पर ये बड़े भी होते हैं, नौला के बाह्य भाग में प्राय: तीन ओर दीवाल होती है। कहीं-कहीं पर दो ओर ही दीवालें होती हैं। ऊपर गुम्बदनुमा छत होती है।

अधिकांश नौलों की छतें चौड़े किस्म के पत्थरों जिन्हें 'पटाल' कहा जाता है, से ढँकी रहती है। नौला के भीतर की दीवालों पर किसी-न-किसी देवता की मूर्ति विराजमान रहती है। अधिकांश नौलों में प्राय: बड़े-बड़े पत्थरों को बिछाकर आँगन बना हुआ दिखता है। बाहरी गन्दगी को रोकने एवं पर्दे के रूप में नौलों में पत्थरों की चाहरदीवारी भी अधिकांशतया बनी हुई पाई जाती है।

नौला हमारी प्राचीन धरोहर के साथ-साथ हमारे पूर्वजों की पर्यावरण के प्रति जागरुकता को भी दर्शाते हैं।
पूर्व से ही कई दानशील प्रवृत्ति के लोगों, राजाओं आदि के द्वारा देवालयों के समीप, नगरों के मध्य तथा पैदल मार्गों के आस-पास तथा ग्रामीण क्षेत्रों में नौलों का निर्माण किया जाता रहा है। प्राचीन समय के बने कई ऐतिहासिक महत्त्व के नौले आज भी कुमाऊँ क्षेत्र में उपलब्ध हैं। यद्यपि ये नौले कहीं-कहीं साधारण तो कहीं-कहीं पर वास्तु शिल्प के अनुसार एवं स्थापत्य, संस्कृति, धार्मिक रीति के अनुसार हमारे समाज के लिये आईना हैं।

कुह्ल

कुह्ल एक नहर जैसा चैनल होता है जिससे हिमाचल प्रदेश में खेतों की सिंचाई की जाती है, कुह्ल आमतौर पर दो मीटर चौड़े और दो मीटर गहरे होते हैं, और 100 मीटर से लेकर एक किलोमीटर तक लम्बे होते है, इस क्षेत्र में ग्लेशियरों से बहने वाला पानी मानव निर्मित सिंचाई की नहरों के एक जटिल जाल द्वारा (जिसे पहाड़ी भाषा में कुह्ल कहा जाता है) गांवों और खेतों की ओर मोड़ दिया जाता है। खेतों के अलावा, कई अन्य गतिविधियां कुह्ल पर निर्भर हैं। हिमाचल के कई गांवों में, पानी की चक्की कुह्ल के साथ बनाई जाती है। एक पहिया जो बहते हुए पानी से ऊर्जा प्राप्त करता है, उसका इस्तेमाल ऊपर के पीसने वाले एक पत्थर को घुमाने में किया जाता है। घरात में पीसा गया आटा मीठा होता है और बिजली के मिल के आटे की तरह जला हुआ नहीं होता। लेकिन ये पारंपरिक प्रणालियां अब लुप्त होती जा रही हैं।

खत्री

हिमाचल प्रदेश के पहाडी क्षेत्रों में खत्री संरचनाओं का निर्माण घरेलू उपयोग के लिए किया जाता है। आकार में लगभग 10X12 फीट और कठोर चट्टान पर्वत में छह फीट गहरी खुदी हुई होती है। यह दो तरह की खत्री हैं। पहले प्रकार में, वर्षा जल को टिन या पाइप की छोटी संरचनाओं के माध्यम से छत से एकत्र किया जाता है। इस पानी का इस्तेमाल घरेलू उपयोग के लिए किया जाता है। दूसरे प्रकार में रिसने के द्वारा खत्रियों में पानी जमा हो जाता है और इस पानी का उपयोग पीने के लिए किया जाता है। ये पारंपरिक जल संचयन संरचनाएं हिमाचल प्रदेश के हमीरपुर, कांगड़ा और मंडी जिलों में पाई जाती हैं। दिलचस्प बात यह भी है कि खत्रियों का स्वामित्व व्यक्ति के साथ-साथ एक समुदाय के पास होता है। यहां सरकारी खत्री भी हैं, जिनका रखरखाव पंचायत करती है।

अपतानी

यह खेती में प्रयोग की जानी वाली जल संरचयन प्रणाली है जो लगभग 1600 मीटर के ऊंचे क्षेत्रों और कोमल ढलान वाली घाटियों में प्रचलित है, जिसमें औसत वार्षिक वर्षा लगभग 1700 मिमी और समृद्ध जल संसाधन जैसे झरने और धाराएं हैं। यह प्रणाली सिंचाई के लिए भूजल और सतही जल दोनों का खेती में संचयन करती है। यह अरुणाचल प्रदेश के निचले सुबनसिरी जिले में जीरो की अपतानी जनजातियों द्वारा प्रचलित है।

अपतानी प्रणाली में, घाटियों को बांस के तख्ते द्वारा समर्थित 0.6 मीटर ऊंचे मिट्टी के बांधों द्वारा अलग किए गए भूखंडों में सीढ़ीदार किया जाता है। सभी भूखंडों में विपरीत दिशा में इनलेट और आउटलेट हैं। नीचले भूखंड का प्रवेश ऊँचे पड़े भूखंड के निकास के रूप में कार्य करता है। गहरे चैनल इनलेट पॉइंट को आउटलेट पॉइंट से जोड़ते हैं। आवश्यकता पड़ने पर इनलेट और आउटलेट को खोलकर और अवरुद्ध करके सीढ़ीदार भूखंड में पानी भर दिया जा सकता है या पानी निकाला जा सकता है।

जंगली पहाड़ी ढलानों के पास 2-4 मीटर ऊंची और 1 मीटर मोटी दीवार बनाकर नदी के पानी को खेती में उपयोग किया जाता है। इसे चैनल नेटवर्क के माध्यम से कृषि क्षेत्रों तक पहुँचाया जाता है।

जाबो

उत्तर-पूर्वी भारत, नागालैंड में जल प्रबंधन की अनूठी प्रणाली है। सदियों पहले, यहां पर जल, जंगल और कृषि प्रबंधन की देखभाल करने के लिए एक स्व-संगठन प्रणाली विकसित की। ''ज़ाबो'', जिसका अर्थ है 'पानी जमा करना' पहाड़ों से बहने वाले वर्षा जल को पकड़ने का एक सरल तरीका है।
इसमें पानी के लिए जलग्रहण प्रदान करने के लिए पहाड़ियों की चोटियों पर जंगलों का संरक्षण शामिल है। अगले स्तर पर बारिश के पानी को रखने के लिए तालाब खोदे जाते हैं, जिसे छोटे चैनलों के माध्यम से वहां लाया जाता है। इन चैनलों को सड़कों के पार भी खोदा गया है। वे अपने तल के साथ जलाशयों के रूप में काम करते हैं और किनारों को घुमाया और संकुचित किया जाता है ताकि रिसाव को कम किया जा सके। पानी मवेशियों के यार्ड से होकर गुजरता है और जानवरों के गोबर और मूत्र को नीचे के खेतों में ले जाता है - मिट्टी की पोषण संबंधी जरूरतों को पूरा करने के लिए एकदम सही होता है। पहाड़ी की तलहटी की ओर धान के खेत होते हैं जहां पानी को रोककर खेती की जाती है।

बांस बूंद सिंचाई

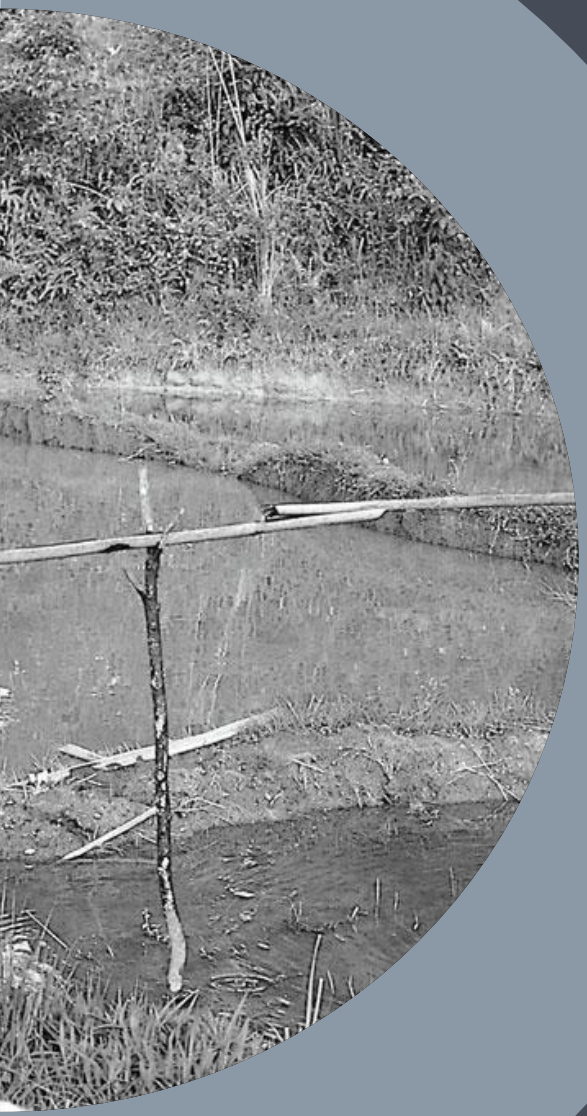

मेघालय में झरनों के पानी को रोकने और बांस की नलियों का इस्तेमाल कर सिंचाई करने की प्रणाली का खूब चलन है। यह प्रणाली इतनी कारगर है कि बांस की नलियों की प्रणाली में प्रति मिनट आने वाला 18 से 20 लीटर पानी सैकड़ों मीटर दूर तक ले जाया जाता है और आखिरकार पौधे के पास पहुंचकर उसमें से प्रति मिनट 20 से 80 बूंद पानी टपकता है। खासी और जयंतिया पहाड़ियों के जनजातीय किसान दो सौ साल से इस प्रणाली का इस्तेमाल कर रहे हैं।

बांस की नालियों से सिंचाई आम तौर पर पान के पत्ते या काली मिर्च उगाने के लिए किया जाता है। इनके पौधे मिलीजुली फसल वाले बगीचे में उगाए जाते हैं। पर्वतीय चोटियों पर बने बारहमासा झरनों का पानी बांस की नलियों से होता हुआ नीचे तक पहुंचता है। नालियों की जगह पानी बांस के बने जल मार्गों से होता हुआ विभिन्न खेतों तक पहुंचता है और पानी का रिसाव भी नहीं होता। समानांतर नलियों में जल के प्रवाह को नियंत्रित करने के लिए नलियों की स्थिति में तब्दीली की जाती है। इस प्रणाली में जल की मात्रा घटाने और उसकी दिशा बदलने के लिए भी यही तरीका अपनाया जाता है। इसका आखिरी सिरा ठीक पौधे की जड़ के पास तक जाता है और इस तरह पानी सही जगह तक पहुंच जाता है।

जल मार्ग बनाने के लिए विभिन्न व्यास के बांसों का इस्तेमाल किया जाता है। इस प्रणाली को बनाने से पहले बांस को छीलकर पतला किया जाता है। और उसके बीच में बनी गांठों को हटा दिया जाता है। उसके बाद स्थानीय कुल्हाड़े-दाव से उन्हें चिकना बनाया जाता है। उसके बाद मुख्य मार्ग से पानी को विभिन्न जगहों पर ले जाने और वितरित करने के लिए छोटी-छोटी नलियों का प्रयोग किया जाता है। नली में पानी के प्रवेश करने से लेकर उसके पौधों के पास पहुंचने तक कुल चार या पांच चरण होते हैं।

डोंग

डोंग जल प्रणाली असम के भारत-भूटान सीमा से लगे सैकड़ों गांवों के लिए एक जीवन रेखा है। प्राकृतिक जल निकायों की कमी और भूजल की अनुपलब्धता के कारण ग्रामीण जल प्रबंधन इस सदी की पुरानी पारंपरिक प्रणाली पर निर्भर हैं। समुदाय-प्रबंधित समितियाँ डोंग प्रणाली की देखरेख करती हैं और पानी के विवेकपूर्ण वितरण को सुनिश्चित करने के लिए जल प्रबंधन के पारंपरिक सिद्धांतों का पालन करती हैं।

एक नदी में स्थलाकृति और उद्गम बिंदु से दूरी के आधार पर 3 फीट से 10 फीट गहरी एक नहर खोदकर एक डोंग बनाया जाता है। फिर कुछ पानी को डोंग में मोड़ने के लिए एक डायवर्सन-आधारित बांध बनाया जाता है जो चार किलोमीटर से 15 किलोमीटर की दूरी के चार से पांच गांवों तक पहुंच सकता है। डोंग के साथ विभिन्न बिंदुओं पर, स्लुइस गेट का एक रूप बनाया जाता है जिसके माध्यम से पानी को एक विशेष गांव में उसकी जरूरतों के अनुसार प्रवाहित किया जाता है। नीचे प्रवाह के कारण डोंगों में जल प्रवाह होता है जो गांवों में कृषि क्षेत्रों और घरों की ओर जाता है। जबकि मुख्य डोंग, जो नदियों से शुरू होते हैं, लगभग 12-फीट चौड़े होते हैं, छोटे सहायक डोंग जो मुख्य डोंग से निकलते हैं, लगभग तीन-फीट चौड़े होते हैं। मुख्य डोंग से शाखाएं निकलती हैं, जिनमें फील्ड चैनल या 'जम्फाई' होते हैं, जो उनसे पानी निकालते हैं। डोंग बनाना एक सामुदायिक प्रयास है और प्रत्येक घर से कम से कम एक व्यक्ति चैनल खोदने में शामिल होता है।

डुंग या जम्पोई

डुंग या जम्पोई छोटे सिंचाई चैनल हैं जो पश्चिम बंगाल के जलपाईगुड़ी जिले में नदियों से चैनल के माध्यम से चावल के खेतों में सिंचाई व्यवस्था करने के लिए बनाये जाते है।

आहर पाईन

आहर-पाईन एक स्वदेशी पुरानी सिंचाई प्रणाली है। जो भारत के दक्षिण बिहार के मैदानी इलाकों में आज भी पर्याप्त क्षेत्रों को सिंचित करती है। यह प्रणाली क्षेत्र की विशेष कृषि जलवायु परिस्थितियों की समझ से विकसित हुई है। आहर आयताकार तटबंध प्रकार की जल संचयन संरचनाएं हैं, यानी तीन तरफ से तटबंध का जलाशय। जबकि पाईन नदी या जलग्रहण क्षेत्र से आहर और चैनलों में पानी जमा करने के लिए बनाए गए डायवर्सन चैनल हैं। इस प्रणाली से एक पईन 400 एकड़ तक सिंचाई कर सकता है। यह बाढ़ और सूखे को नियंत्रित करने में मदद करता है और गांवों के लिए एक सुरक्षा तंत्र के रूप में कार्य करता है। आहर और पाईन अपने सिस्टम में अधिशेष पानी वितरित करके बाढ़ को नियंत्रित करने में सहायता करते हैं। सूखे को भी नियंत्रित किया जाता है क्योंकि यह जलाशय में एक वर्ष के लिए पानी उपलब्ध कराता है।

जलप्लावन नहरे

बंगाल में कभी जलप्लावन नहरों की असाधारण व्यवस्था थी। सर विलियम विलकॉक्स, एक ब्रिटिश सिंचाई विशेषज्ञ, जिन्होंने मिस्र और इराक में भी काम किया था, ने दावा किया कि लगभग दो शताब्दी पहले तक इस क्षेत्र में नहरों का प्रचलन था। विलकॉक्स के अनुसार अतिप्रवाह सिंचाई की प्राचीन प्रणाली हजारों वर्षों से चली आ रही थी। दुर्भाग्य से, 18वीं शताब्दी में अफगान-मराठा युद्ध और उसके बाद भारत पर ब्रिटिश विजय के दौरान, इस सिंचाई प्रणाली की उपेक्षा की गई, और इसे कभी भी पुनर्जीवित नहीं किया गया। इस प्रणाली में नहरें चौड़ी और उथली थीं, जो नदी के पानी को ले जाती थीं, जो महीन मिट्टी से भरपूर थी। नहरें लंबी और निरंतर और एक दूसरे के काफी समानांतर थीं, और सिंचाई के प्रयोजनों के लिए एक दूसरे से सही दूरी पर थीं। नहरों के किनारों पर काटकर या रोककर सिंचाई की जाती थी।

दिघि

बादशाह शाहजहाँ (1627-58 ई.) ने सबसे पहले शहर को अरावली की पहाड़ियों से हटाकर यमुना के मैदानों की ओर स्थानांतरित किया। लेकिन उसने नए महल, सेना और आम लोगों की पानी की जरूरतों को पूरा करने के लिए पर्याप्त व्यवस्था नही थी। बाद में इस क्षेत्र में शाहजहानी नहरों और दिघियों की प्रणाली शायद उस समय की सर्वश्रेष्ठ रचना थी।

शाहजहाँ ने अली मर्दन खान और उसके फारसी कारीगरों को यमुना का पानी शहर और अपने महल में लाने का आदेश दिया। अली मर्दन खान ने न केवल यमुना के पानी को महल में लाया, बल्कि इस नहर को सिरमौर पहाड़ियों से भी जोड़ा, जो वर्तमान में नजफगढ़ के पास दिल्ली की सीमा पर स्थित है। नई नहर, अली मर्दन नहर, साहिबी नदी बेसिन के पानी को पुरानी नहर में विलय करने के लिए प्रसारित करती है।

मुख्य शहर में, नहर ने दीघियों और कुओं को रिचार्ज किया। एक दिघी लगभग 0.38 मीटर गुणा 0.38 मीटर का एक वर्गाकार या गोलाकार जलाशय था जिसमें प्रवेश करने के लिए सीढ़ियाँ थीं। प्रत्येक दिघी के अपने गेट थे। दिघी की सीढ़ियों पर लोगों को नहाने या कपड़े धोने की अनुमति नहीं थी। हालांकि, कोई भी निजी इस्तेमाल के लिए पानी लेने के लिए स्वतंत्र था। अधिकांश घरों में या तो अपने स्वयं के कुएं थे या उनके परिसर में छोटी दीघियां थीं। नहर का पानी शहर तक नहीं पहुंचने और दिघियों के सूख जाने की स्थिति में, कुएं पानी का मुख्य स्रोत थे। कुछ प्रमुख कुओं में वर्तमान जुबली सिनेमा के पास इंद्रा कुआं, गली-पहाड़-वाली के पास पहाड़-वाला-कुआं और छिपीवाड़ा के पास चाह राहत थे। 1843 में 607 कुएं थे, जिनमें से 52 में मीठा पानी उपलब्ध था। सीवर सिस्टम से पानी दूषित होने के कारण आज 80 फीसदी कुएं बंद हैं।

बावली

भारत में तालाबों के अलावा, पुराने समय में राजा, शहंशाह, धनी व्यापारी और बंजारों का बावलियों के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। यह कुएं और बावली का मिला जुला रूप है, इन दोनों के बीच कमरे, बरामदे, खिड़कियां, जालियां, गैलरी आदि होती हैं. इस पूरी इमारत को ही बावड़ी या बावली कहा जाता है। पुराने समय में गर्मी के मौसम में पानी की कमी को दूर करने के लिए कई कुएं और बावड़ियां (बावलियां) बना कर बारिश के पानी को इकट्ठा किया जाता था। पानी के प्राकृतिक स्रोतों के सूख जाने के बाद जलापूर्ति में इन कुओं और बावलियों की अहम भूमिका होती थी। असल में बावली पानी का एक ऐसा विशाल कुंड है, जिसमें पानी तक आने जाने के लिए सीढ़ियां बनी होती हैं. ये बावली धर्मनिरपेक्ष संरचनाएं थीं जिनसे हर कोई पानी खींच सकता था। गंडक-की-बाओली (इसका नाम इसलिए रखा गया है क्योंकि इसके पानी में गंडक या सल्फर है) सुल्तान इल्तुतमिश (1211-36) के शासनकाल के दौरान बनाया गया था। इस अवधि के दौरान शहर के अन्य हिस्सों में भी बावड़ियों का निर्माण किया गया था। बावड़ियों का निर्माण चार कालखंडों में हुआ है पूर्व-सोलंकी काल (8वीं से 11वीं शताब्दी सीई); सोलंकी काल (11वीं से 12वीं शताब्दी सीई); वाघेला काल (13वीं सदी के मध्य से 14वीं सदी के अंत तक); और सल्तनत काल (13वीं सदी के मध्य से 15वीं सदी के अंत तक)। देश के अलग-अलग हिस्सों में इन्हे अलग-अलग नामों से पुकारा जाता है। गुजरात व मध्य प्रदेश में इसे 'बाव' या 'बावली' कहते हैं, राजस्थान में 'बावड़ी' या 'बेरी' कहा जाता है। पहले के जमाने में व्यापार के लिए की जाने वाली लंबी यात्राओं में रात्रि विश्राम के लिए इन्हीं बावलियों का इस्तेमाल किया जाता था। बावली के पानी के आस-पास बनाए गए बरामदों और कमरों में गर्मी से बचने के लिए पनाह ली जाती थी। इसके अलावा रिहायशी इलाकों में इनका इस्तेमाल पानी की ज़रूरत पूरी करने के लिए किया जाता था। बावड़ियों में मूर्तियां और शिलालेख लोगों के पारंपरिक सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन के लिए उनके महत्व को प्रदर्शित करते हैं।

कुण्डा / कुण्डी

कुण्डा या कुण्डी एक तश्तरी में उलटे प्याले की तरह दिखता है। ये संरचनाएं पीने के लिए वर्षा जल का संचयन करती हैं। पश्चिमी राजस्थान में थार रेगिस्तान के रेतीले इलाकों और गुजरात के कुछ क्षेत्रों में पायी जाती हैं।

यह एक गोलाकार भूमिगत कुआँ, कुंडों में एक तश्तरी के आकार का जलग्रहण क्षेत्र होता है जो धीरे-धीरे उस केंद्र की ओर झुकता है जहाँ कुआँ स्थित है। पानी के इनलेट्स में एक तार की जाली मलबे को कुएं में गिरने से रोकती है।

कुएं के किनारे (कीटाणुनाशक) चूने और राख से ढके हुए होते हैं। अधिकांश कुओं में पानी की सुरक्षा के लिए एक गुंबद के आकार का आवरण या कम से कम एक ढक्कन होता है। जरूरत पड़ने पर बाल्टी से पानी निकाला जा सकता है। कुंडों की गहराई और व्यास उनके उपयोग पर निर्भर करता है।

कुई / बेरी

पश्चिमी राजस्थान में पाए जाने वाले कुई /बेरी ज्यादातर 10-12 मीटर गहरे होते हैं जो किसी जल संरचना के पास पानी के लिए खोदे जाते है। कुई का उपयोग अल्प वर्षा वाले क्षेत्रों में वर्षा जल संचयन के लिए भी किया जा सकता है। कुई का मुंह आमतौर पर बहुत संकरा बनाया जाता है। यह एकत्रित पानी को वाष्पित होने से रोकता है। अन्दर कुई चौड़ा हो जाता है जिससे पानी एक बड़े सतह क्षेत्र में रिस सकता है। इन पूरी तरह से कच्चे (मिट्टी) संरचनाओं का मुंह आमतौर पर लकड़ी के तख्तों से ढके होता हैं। इस क्षेत्र में संकट की स्थिति में अंतिम संसाधन के रूप में इस पानी का कम से कम उपयोग किया जाता है।

झालरा

झालारा मानव निर्मित तालाब है, जो राजस्थान और गुजरात में पाए जाते है, जो अनिवार्य रूप से सामुदायिक उपयोग और धार्मिक संस्कारों के लिए बनाये गये थे। इनकी ज्यादातर डिजायन आयताकार, झालरों में तीन या चार तरफ सीढ़ियां होती हैं। यह भूजल निकाय हैं जो आसपास के क्षेत्रों में पानी की आसान और नियमित आपूर्ति सुनिश्चित करने के लिए बनाए गए थे। झालार नदी, तालाब या झील के भूमिगत रिसाव को इकट्ठा करते हैं। इन झालरों के पानी का उपयोग पीने के लिए नहीं बल्कि सामुदायिक स्नान और धार्मिक अनुष्ठानों के लिए भी किया जाता था। सबसे पुराना झालरा महामंदिर झालरा है जो 1660 ई. का है।

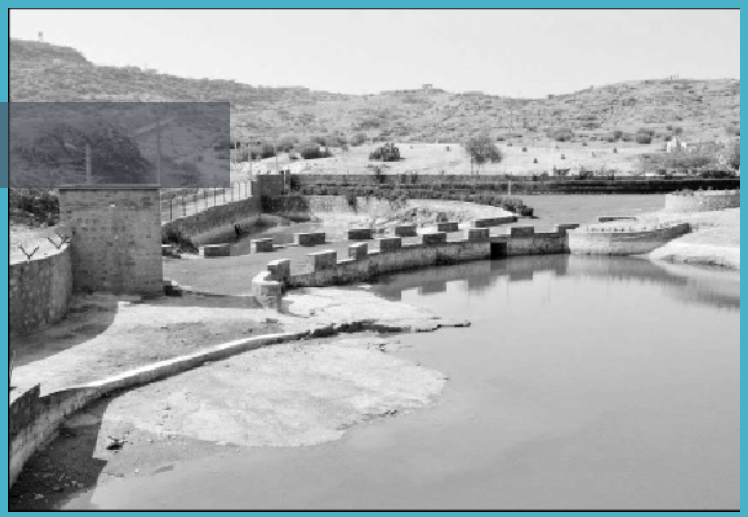

नदी

नदी गाँव के तालाब हैं, जो राजस्थान में जोधपुर के पास पाए जाते हैं। इनका उपयोग बरसात के मौसम में आसपास के प्राकृतिक जलग्रहण क्षेत्र से पानी के भंडारण के लिए किया जाता है। उपलब्ध प्राकृतिक जलग्रहण क्षेत्र और इसकी जल क्षमता के आधार पर ग्रामीणों द्वारा साइट का चयन किया जाता है। नदी से पानी की उपलब्धता बारिश के बाद दो महीने से लेकर एक साल तक रहती है। संबंधित जलग्रहण और जल धारण की विशेषताओं के कारण नदी के स्थान का इसकी भंडारण क्षमता पर बहुत प्रभाव पड़ता है।

टांका

टांका राजस्थान के रेतीले ग्रामीण क्षेत्रों में वर्षाजल को संग्रहित करने की महत्वपूर्ण परम्परागत प्रणाली है। टांका एक बेलनाकार पक्का भूमिगत गढढा है जिसमें छतों, आंगन या कृत्रिम रूप से तैयार कैचमेंट से वर्षा का पानी इकठ्ठा होता है। जिसको ऊपर से ढक दिया जाता है। एक बार पूरी तरह से भर जाने के बाद, एक टांके में रखा पानी पूरे शुष्क मौसम में रह सकता है और 5-6 सदस्यों के परिवार के लिए पर्याप्त होता है। इसमें संग्रहित जल का मुख्य उपयोग पेयजल के लिए करते है। निजी उपयोग के लिए टांका का निर्माण घर के आंगन या चबूतरे पर किया जा सकता है, जबकि सामुदायिक कुडियां पंचायत भूमि में बनाई जाती है जिनका उपयोग गांव वाले करते है।

खडीन

खडीन खेत के किनारे सिद्ध-पाल बाँधकर वर्षा-जल को कृषि भूमि पर संग्रह करने तथा इस प्रकार संग्रहीत जल से कृषि भूमि में पर्याप्त नमी पैदाकर उसमें फसल उत्पादन करने की एक परम्परागत तकनीक है। ऐसा कहा जाता है कि खडीन सर्वप्रथम पन्द्रहवीं शताब्दी में पालीवाल ब्राह्मणों द्वारा जैसलमेर क्षेत्र में बनाई गई। यह तकनीक इसके बाद जोधपुर, बाडमेर और बीकानेर के क्षेत्रों में भी अपनायी गई। खडीन एक अर्द्ध चन्द्राकारनुमा कम ऊँचाई (5 फीट से 8 फीट) वाला मिट्टी का एक बाँध है जो ढाल की दिशा के विपरीत बनाया जाता है, जिसका एक छोर वर्षा-जल प्राप्त करने के लिये खुला रहता है। किसी भी खडीन को बनाने में तीन तत्व महत्त्वपूर्ण होते हैं - 1. पर्याप्त जलग्रहण क्षेत्र, 2. खडीन बाँध तथा 3. फालतू पानी के निकास के लिये उचित स्थान पर नेहटा (वेस्ट वीयर) बनाना तथा पूरे पानी को बाहर निकालने के लिये खडीन की तलहटी में पाइप लाइन (स्लूस गेट) लगाना। सामान्य समय में खडीन का मोखा बन्द रखा जाता है। खडीन 150 मी. से 1000 मी. तक लम्बा हो सकता है। इसका आकार साधारणतया उस क्षेत्र की औसत वर्षा, आगोर का ढाल तथा भूमि की गुणवत्ता पर ही निर्भर करता है। इस तकनीक के समान दुनियाँ में और भी प्रयोग हुए हैं, जैसे कि उर लोग (आज के अरब) 4500 ई.पू. में और बाद में मध्य पूर्व के नेबेतियन। इसी तरह करीब नेगेव मरुस्थल के लोग तथा 500 वर्ष पूर्व दक्षिण पश्चिमी कोलोराडो के लोग इसे प्रयोग में लाते थे।

विरदास

गुजरात के कच्छ के महान रण के घास के मैदानों की यात्रा करने वाले घुमंतू मालाधारी ने विरदास नामक जल संचयन प्रणाली का निर्माण किया जो उथले कुएं (जिन्हें झील भी कहा जाता है) जो बन्नी घास के मैदानों में पाए जा जाते हैं। मालाधरियों ने मानसून के मौसम में पानी के प्रवाह का अध्ययन करके इन गड्ढों की पहचान की और वहां एक झील का निर्माण किया जाता है। इस क्षेत्र में यह संरचना उपयोगी होती है क्योंकि इससे मालाधरियों को खारे अनुपयुक्त पानी से प्रयोग करने योग्य पानी को अलग करने में मदद मिली। संरचनाएं एक ऐसी तकनीक का उपयोग करती हैं जो यहां के समुदाय को पीने योग्य मीठे पानी को खारे पानी से अलग करने में मदद करती है। वर्षा का पानी मिट्टी में प्रवेश करने के बाद, यह उनके घनत्व में अंतर के कारण खारे भूजल से ऊपर जमा हो जाता है। इस पूरी जल प्रणाली में सबसे महत्वपूर्ण संरचना विरदा या खोदा हुआ कुआं है, क्योंकि वे सतह और उप-सतह के बीच का अंतरफलक हैं। एक झील के भीतर, लगभग 1 से 1.5 मीटर व्यास और 3 से 5 मीटर गहराई के 10 से 20 कुएं खोदे जाते है। इन खोदे गए कुओं को अंदर से चौकोर आकार में लकड़ी से सहारा दिया जाता है। इन विरदा के अंदरूनी हिस्से में स्थानीय मिट्टी के साथ मिश्रित स्थानीय रूप से उपलब्ध घास लगायी जाती है जो फिल्टर के रूप में काम करती हैं। इन खोदे गए कुओं के ऊपरी हिस्से पर मिट्टी का प्लास्टर किया जाता है।

तालाब / बंधिस

तालाब जल संरक्षण जलाशय हैं। वे प्रा. कृतिक एवं मानव निर्मित दोनों प्रकार के होते है। जैसे बुंदेलखंड क्षेत्र के टीकमगढ़ में तालाब (पोखरियान) एवं उदयपुर में झीलें। एक मध्यम आकार की झील को बंधी या तालाब कहा जाता है; यह पांच बीघे से कम के जलाशय क्षेत्र होते है। यह संरचना सिंचाई और पीने के उद्देश्यों की पूर्ति करता था। जब मानसून के कुछ दिनों बाद इन जलाशयों का पानी सूख जाता है, तो तालाब के खेतों में चावल की खेती भी की जाती है।

साजा कुआं

साज़ा कुआं पूर्वी राजस्थान के मेवाड़ में अरावली पहाड़ियों में सिंचाई का सबसे महत्वपूर्ण स्रोत है। बाद में इस प्रणाली का उपयोग मध्य प्रदेश एवं उत्तर प्रदेश में भी किया गया। कुएं के गड्ढे बनाने के लिए खोदी गई मिट्टी का उपयोग एक विशाल गोलाकार नींव या कुएं से दूर ढलान वाले एक ऊंचे मंच के निर्माण के लिए किया जाता है। इन कुओं में सिंचाई के लिए रेहट को लगाया जाता है जो एक पारंपरिक कुऐं से पानी निकालने वाली प्रणाली है। साज़ा कुवा निर्माण आम तौर पर किसानों के एक समूह द्वारा किया जाता है जिनके सिंचाई हेतु कुऐं के आस-पास जमीन होती है। इसको खोदने से पहले भूजल का पता लगाने में विशेष कौशल वाला व्यक्ति, जगह का चिन्हाकंन करता है।

जोहड

जोहड़ छोटे मिट्टी के बांध हैं जो वर्षा जल को रोककर संरक्षित करते हैं तथा जमीन में पानी का रिसाव और भूजल पुनर्भरण में सुधार करते हैं। यह तीन तरफ प्राकृतिक रूप से उच्च ऊंचाई वाले क्षेत्र में खुदाई करके बनाये जाते ह है, और खुदाई की गई मिट्टी का उपयोग चौथी तरफ एक दीवार बनाने के लिए किया जाता है। कभी-कभी, कई जोहड़ गहरे चौनलों के माध्यम से आपस में जुड़े होते हैं, जिसमें एक ही आउटलेट नदी या नाले में खुलता है। 1984 से, पिछले सोलह वर्षों में राजस्थान के अलवर जिले के 650 से अधिक गांवों में फैले कुछ 3000 जोहड़ों का पुनरुद्धार किया गया है। इसके परिणामस्वरूप भूजल स्तर में लगभग 6 मीटर की सामान्य वृद्धि हुई है और क्षेत्र में वन क्षेत्र में 33 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। पांच नदियां जो मानसून के तुरंत बाद सूख जाती थीं, अब बारहमासी हो गई हैं, जैसे कि अरवरी नदी

नाडा / बांध

नाडा/बांध थार रेगिस्तान के मेवाड़ क्षेत्र में पाए जाते हैं। यह पत्थर के चेकडैम है, जिसका निर्माण एक धारा या गली में किया गया है, जो वर्षा के बाद पानी को संरक्षित करने का काम करते है। इसका निर्माण बंजर भूमि, चारागाह भूमि या कृषि क्षेत्र के आस-पास किया जाता है। यह वर्षा जल का अल्पकालिक भंडारण प्रदान करता है और मुख्य रूप से जानवरों के पानी पीने के लिए उपयोग किया जाता है। नाडी - नाडा की तुलना में अलग होती है नाडी के चारों ओर उच्च तटबंध प्रदान किए जाते हैं। नाडी की गहराई 6-8 मीटर तक रखी जाती है।

पत

मध्य प्रदेश के झाबुआ जिले के भिटड़ा गांव ने अनूठी पत प्रणाली विकसित की। इस प्रणाली को इलाके की ख़ासियत के अनुसार तैयार किया गया था ताकि पानी को तेजी से बहने वाली पहाड़ी धाराओं से पानी को पत नामक सिंचाई चैनलों में बदल दिया गया। धारा का मोड़ने के लिए सागौन के पत्तों और मिट्टी के साथ पत्थरों को लगाकर बांधों का निर्माण किया जाता है। एक सिंचाई प्रणाली देने के लिए बांध के बगल से छोटी चैनलों को कुशलता से बनाया जाता है, जिसका उपयोग ग्रामीण बारी-बारी से करते है।

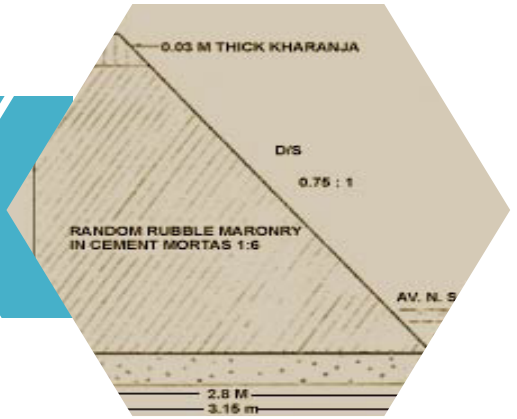

रापट / परकोलेशन टैंक

रापट एक जल संरक्षण संरचना होती है, जो पत्थरों से बनाये जाते है, जिनको चिनाई कर लगाया जाता है। इनमें वर्षा के दौरान पानी जमा होता है। अगर अधिक बारिश होती है तो पानी इस जल संरचना के ऊपर से निकल जाता है। राजस्थान के रैपट्स छोटे होने के कारण सभी चिनाई वाली संरचनाएं हैं। रापट और परकोलेशन टैंक सीधे ज्यादा सिंचाई तो नहीं करते हैं, लेकिन डाउनस्ट्रीम 3-5 किमी की दूरी के भीतर अच्छी तरह से भूजल को रिचार्ज करते हैं। इन संरचनाओं में जल्द ही सिल्ट जमा हो जाती है, एक रापट का अनुमानित जीवन 5 से 20 साल के बीच होता है।

चंदेला तालाब

तालाब बनाने की संस्कृति बुंदेलखंड क्षेत्र में व्यापक थी, जिस पर चंदेला और बुंदेला राजाओं का शासन था। 8000 चंदेला और बुंद. ेला तालाब 800 से 1200 ईस्वी के बीच बनाए गए थे। इन तालाबों का निर्माण पहाड़ों के बीच बहने वाले नालों में पानी के प्रवाह को रोककर 60 मीटर या उससे अधिक चौड़े बड़े मिट्टी के तटबंधों को खड़ा करके किया गया था। इन पहाड़ियों के नीचे लंबे समय तक चलने वाली क्वाट्र्ज चट्टानें हैं, जो प्राकृतिक भूजल अवरोध के रूप में काम करती हैं। मिट्टी के तटबंधों को दोनों तरफ मोटे पत्थरों की दीवारों के साथ सहारा दिया गया है, जिससे पत्थर की सीढ़ियाँ बनीं हुयी है। यही कारण है कि ये तालाब हजार साल बाद भी जीवित रहे लेकिन एकमात्र समस्या जो इन तालाबों का सामना कर रही है, वह है तालाब में सिल्ट जमाव। चंदेला तालाबों में आमतौर पर तटबंध के बीच में कहीं पानी बाहर निकलने के लिए आउटलेट की व्यवस्था भी है; कई पुराने और छोटे ताला. बों का निर्माण मानव बस्ती के पास या पहाड़ियों के समूह की ढलानों के पास किया गया था। यह तालाब मवेशियों की पेयजल जरूरतों को पूरा करने के लिए काम कर रहे है।

बुन्देला तालाब

यह तालाब चंदेला तालाबों की तुलना में बड़े होते हैं। यह तालाब पत्थर, मिट्टी एवं चूना का प्रयोग करते हुए बनाए गए हैं। संरचनाओं पर चबूतरे, मंडप और शाही बाग थे जो बनवाने वाले की महिमा दिखाने के लिए डिज़ाइन किए गए थे लेकिन ये तालाब चंदेला तालाबों की तरह कम लागत के एवं सरल नहीं हैं। इन तालाबों का निर्माण क्षेत्र में बढ़ती पानी की मांग को पूरा करने के लिए किया गया था, इन तालाबों का रखरखाव राजा द्वारा नियोजित व्यक्ति द्वारा किया जाता था, लेकिन छोटे तालाबों को ग्रामीणों के द्वारा सामूहिक रूप से गाद हटाते है और तटबंध की मरम्मत करते है। यहाँ के बुन्देली तालाबों की उम्र सौ से पौन हजार वर्ष तक की हो चुकी है। दीर्घायु होने के कारण वे जर्जर हो चुके हैं। बिना गहरीकरण कराये समाज की उपेक्षा के कारण तालाबों के बाँध खस्ता हाल में हैं।

काटा/मुंडा या बंधा

गोंडों के प्राचीन आदिवासी साम्राज्य (अब उड़ीसा और मध्य प्रदेश में) में काटा/मुंडा या बंधा सिंचाई के मुख्य स्रोत थे। इन काटा में से अधिकांश का निर्माण ग्राम प्रधानों द्वारा किया गया था, जिन्हें गौंटिया के नाम से जाना जाता था, जिन्हें बदले में गोंड राजाओं से भूमि दी जाती थी। इस क्षेत्र की भूमि को उसकी स्थलाकृति के आधार पर चार समूहों में वर्गीकृत किया गया है हाईलैंड; ढलान वाली भूमि; मध्यम भूमि; और निचली भूमि। यह वर्गीकरण चुनने में मदद करता है। काटा एक साधारण तालाब है जिसे पत्थर के तटबंध बनाया जाता है। यह किसी भी तरह से उत्तर से दक्षिण या पूर्व से पश्चिम में बनाये जाते है और दोनों सिरों पर थोड़ा घुमावदार होता है जिससे काटा की प्राकृतिक जल निकासी बनी रहती है। सिंचाई में आसानी होती है। मुंडा किसी भी प्रकार के जल निकासी चैनल में बना छोटा तटबंध है जो नदी और नाले पर बनाया जाता है। किसान व्यक्तिगत सिंचाई कार्य के लिए इसे बनाते थे।

बंधा यह चार भुजाओं वाला तालाब होता है जो एक काटा के नीचे खोदकर बनाया जाता है, जहाँ काटा से रिसकर पानी प्राप्त होता है।

चेरूबु

चेरुवु आंध्र प्रदेश के चित्तूर और कडप्पा जिलों में पाए जाते हैं। कहा जाता है कि इस क्षेत्र में चुरूबु का निर्माण 11वी सदी मे चोल राजाओं के द्वारा करवाया गया था। यह वर्षा जल को संरक्षिज्ञत करने वाले जलाशय हैं। चेरुवु तटबंध थूमू (स्लुइस), अलुगु या मारवा या कल्जू (बाढ़ मेड़) और कलावा (नहर) से सुसज्जित हैं। कई चुरूबु तो इतनी बडी थी कि अगर 4 वर्ष वर्षा ना हो तब भी यह संरचना 16 गांवों में पीने एवं सिंचाई का पानी उपलब्ध कराने की सक्षम थी।

कोहली तालाब

महाराष्ट्र के भंडारा जिले में खेती करने वालों के एक छोटे समूह कोहली ने लगभग 250-300 साल पहले लगभग 43 ,381 पानी की टंकियों का निर्माण किया था। 1950 के दशक में जब तक सरकार ने उन्हें अपने अधिकार में नहीं लिया, तब तक इन तालाबों ने क्षेत्र में सिंचाई में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। यह अभी भी चावल की सिंचाई के लिए महत्वपूर्ण है। कोहली तालाब सभी आकार के थे।

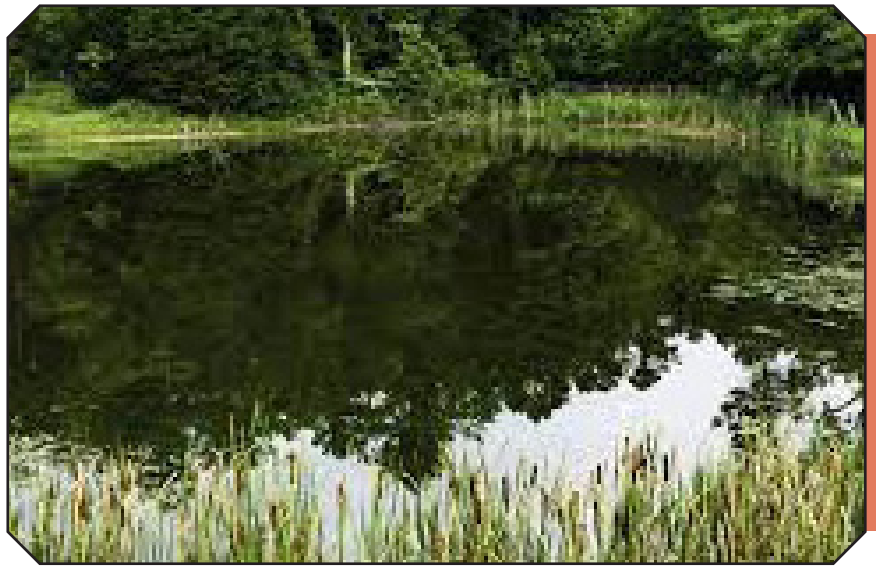

भंडारस

ये नदियों पर बने चेक डैम या डायवर्सन वियर हैं। यह महाराष्ट्र में पाई जाने वाली एक पारंपरिक प्रणाली है। इनकी उपस्थिति से नदियों का जल स्तर इतना बढ़ जाता है कि पानी नहरों में प्रवाहित होने लगता है। इनका उपयोग पानी को रोकने और एक बड़ा जलाशय बनाने के लिए भी किया जाता है। भंडारस वर्षा जल संचयन में सुविधा प्रदान करते हैं जो बारिश के बाद कुछ महीनों के लिए पानी की आपूर्ति सुनिश्चित करता है। ये या तो ग्रामीणों द्वारा या निजी व्यक्तियों द्वारा बनाए गए हैं, अधिकांश भंडारस आज समाप्त हो गए हैं। बहुत कम अभी भी उपयोग में हैं।

फड

उत्तर-पश्चिमी महाराष्ट्र में प्रचलित समुदाय-प्रबंधित फड़ सिंचाई प्रणाली, संभवत लगभग 300-400 साल पहले अस्तित्व में आई थी। यह प्रणाली धुले और नासिक जिलों में तापी बेसिन - पंझरा, मोसम और अराम में तीन नदियों पर संचालित होती है। जो अभी भी यहाँ कुछ स्थानों पर उपयोग में है। संरचना के निर्माण के लिए स्थल का चयन करने की प्रक्रिया नदी के आधार ढाल और कमान क्षेत्र के ढलान को ध्यान में रखते हुए की जाती है। नहर की लंबाई के अनुसार अलग-अलग जगहों पर स्कोअरिंग स्लूस लगाए जाते हैं। यह रेत और गाद की निकासी के लिए एक स्वचालित सफाई उपकरण के रूप में काम करता है।

केरे

कन्नड़ में केरे कहे जाने वाले तालाब, मध्य कर्नाटक के पठार में सिंचाई की प्रमुख पारंपरिक विधि थी। या तो नदियों पर बने एनीकट (चेक डैम) से शाखाओं में बंटी चैनलों द्वारा या घाटियों में धाराओं द्वारा चला जाता था। एक तालाब के पानी से आगे सभी धाराओं में आपूर्ति की जाती थी। तालाब एक श्रृंखला में बनाए गए थे, जो आमतौर पर कुछ किलोमीटर दूर स्थित होते थे। तालाब बनाने से पहले यह सुनिश्चित किया जाता था कि जल का प्रवाह कितना तेज है। इस श्रृंखला में ऊपर के तालाब का रिसाव अगले निचले वाले तालाब में एकत्र किया जाता था।

रामटेक

रामटेक मॉडल का नाम महाराष्ट्र के रामटेक शहर में जल संचयन संरचनाओं के नाम पर रखा गया है। यह एक वैज्ञानिक भूजल और सतही जल निकायों के एक जटिल नेटवर्क है, इस प्रणाली का निर्माण और रखरखाव ज्यादातर क्षेत्र के मालगुजारों (जमींदारों) द्वारा किया गया था। इस प्रणाली में, भूमिगत और सतही नहरों से जुड़े टैंक एक श्रृंखला बनाते हैं जो तलहटी से मैदानी इलाकों तक फैली हुई है। एक बार पहाड़ियों में स्थित तालाबों को क्षमता से भर दिया जाता है, तो पानी लगातार तालाबों को भरने के लिए बहता है, और आमतौर पर एक छोटे से वाटरहोल में समाप्त होता है। यह प्रणाली इस क्षेत्र के कुल प्रवाह का लगभग 60 से 70: हिस्सा बचाती है! वाटरशेड क्षेत्र में गिरने वाली हर बारिश की बूंद का उपयोग करने के लिए बुद्धिमानी से डिजाइन की गई यह प्रणाली उपेक्षा और अज्ञानता के कारण बिखर रही है।

सुरंगम

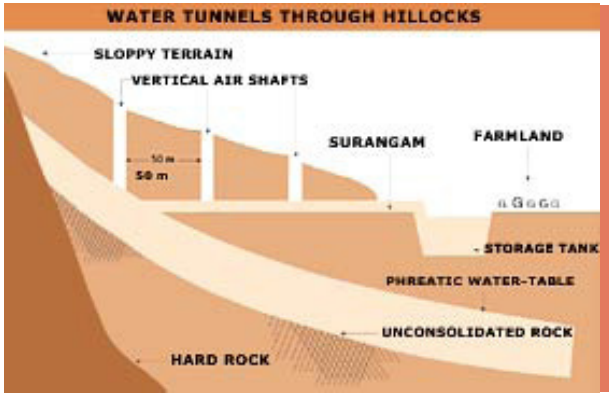

केरल के उत्तरी मालाबार क्षेत्र में कासरगोड जिला एक ऐसा क्षेत्र है जिसके लोग सीधे सतही जल पर निर्भर नहीं रह सकते हैं। भूभाग ऐसा है कि मानसून में नदियों में उच्च प्रवाह और शुष्क महीनों में कम प्रवाह होता है। इसलिए यहां के लोग भूजल पर और एक विशेष जल संचयन संरचना पर निर्भर हैं, जिसे सुरंगम कहा जाता है। सुरंगम शब्द सुरंग के लिए एक कन्नड़ शब्द से लिया गया है। कासरगोड के विभिन्न भागों में इसे थुरंगम, थोरापु, माला आदि के नाम से भी जाना जाता है। यह एक क्षैतिज कुआँ है जिसकी खुदाई ज्यादातर कठोर लेटराइट रॉक संरचनाओं में की जाती है। खुदाई तब तक जारी रहती है जब तक कि अच्छी मात्रा में पानी नहीं मिल जाता। पानी कठोर चट्टान से रिसता है और सुरंग से बाहर बहता है। यह पानी आमतौर पर सुरंगम के बाहर बने एक खुले गड्ढे में एकत्र किया जाता है।

एक सुरंगम लगभग 0.45-0.70 मीटर (मीटर) चौड़ा और लगभग 1.8-2.0 मीटर ऊँचा होता है। लंबाई 3-300 मीटर से भिन्न होती है। आमतौर पर मुख्य सुरंग के अंदर कई सहायक सुरंगों की खुदाई की जाती है। यदि सुरंगम बहुत लंबा है, तो अंदर वायुमंडलीय दबाव सुनिश्चित करने के लिए कई ऊर्ध्वाधर वायु शाफ्ट प्रदान किए जाते हैं। क्रमिक वायु शाफ्ट के बीच की दूरी 50-60 मीटर के बीच भिन्न होती है। वायु शाफ्ट के अनुमानित आयाम 2 मीटर गुणा 2 मीटर हैं, और गहराई जगह-जगह बदलती रहती है। सुरंगम क़ानत के समान हैं जो कभी मेसोपोटामिया और बेबीलोन में 700 ईसा पूर्व के आसपास मौजूद थे। 714 ईसा पूर्व तक, यह तकनीक मिस्र, फारस (अब ईरान) और भारत में फैल गई थी।

एरी

तमिलनाडु की एरी (टैंक) प्रणाली भारत की सबसे पुरानी जल प्रबंधन प्रणालियों में से एक है। यह अभी भी राज्य में व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है, एरिस बाढ़ नियंत्रण प्रणाली के रूप में कार्य करता है, भारी वर्षा की अवधि के दौरान मिट्टी के कटाव और प्रवाह के कारण हो रही बर्बादी को रोकता है, और भूजल को रिचार्ज भी करता है। यह नदी के पानी को मोड़ने वाले चैनलों द्वारा भरा जाता है, या एक गैर-सिस्टम एरी, जो पूरी तरह से बारिश से भरा जाता है। सबसे दूर के गांव तक पहुंच को सक्षम करने और अतिरिक्त आपूर्ति के मामले में जल स्तर को संतुलित करने के लिए टैंक आपस में जुड़े हुए हैं। एरी प्रणाली सिंचाई के लिए नदी के पानी के पूर्ण उपयोग को सक्षम बनाती है और उनके बिना, तमिलनाडु में धान की खेती असंभव होती है।

कोराम्बु एक अस्थायी बांध है जो नहरों के मुहाने पर बनाया जाता है, इसे मिट्टी और घास से बनाया जाता है। इसका निर्माण नहर के दोनों किनारों को छूते हुए एक मजबूत लकड़ी के बीम को क्षैतिज रूप से ठीक करके किया गया है। उचित ऊंचाई के ऊर्ध्वाधर लकड़ी के बीमों की एक श्रृंखला खड़ी की जाती है, जिसके निचले सिरे जमीन पर मजबूती से टिके होते हैं और दूसरे सिरे क्षैतिज बीम से बंधे होते हैं। बारीकी से बुना हुआ या उलझा हुआ नारियल का छप्पर इस फ्रेम से बंधा होता है। उलझे हुए फ्रेम पर मिट्टी का एक कोट लगाया जाता है। घास की एक परत भी सावधानी से लगाई जाती है जो मिट्टी के हटने से रोकती है। कोराम्बु का निर्माण नहर में जल स्तर बढ़ाने और पानी को फील्ड चैनलों में मोड़ने के लिए किया गया है। यह इस प्रकार बनाया गया है कि इसके ऊपर से अतिरिक्त पानी बहता रहता है और केवल आवश्यक मात्रा में पानी ही डायवर्जन चैनलों में प्रवाहित होता है। कोरम्बु की ऊंचाई इतनी समायोजित है कि नदी के ऊपर स्थित खेत जलमग्न नहीं हैं। पानी को एक खेत से दूसरे खेत में तब तक बहने दिया जाता है जब तक कि सभी खेत सिंचित नहीं हो जाते। इनका निर्माण वर्ष में दो बार विशेष रूप से मानसून के मौसम की शुरुआत से पहले किया जाता है ताकि सर्दी और गर्मी के मौसम में पानी की आपूर्ति की जा सके। केरल के कासरगोड और त्रिशूर जिलों में, कोराम्बु को चिरा के नाम से जाना जाता है।

ऊरनी

ऊरनी चौथी शताब्दी ईसा पूर्व से 5 वीं शताब्दी सीई तक के विभिन्न समय के दौरान बनायी गयी। इन दौरान इस क्षेत्र में पीने के पानी के तालाब के महत्व को दर्शाता है। इन्हें स्थानीय समुदायों, जमींदारों, राजाओं द्वारा घरेलू उपयोग, पीने, पशुधन की जरूरत, मछली पकड़ने, कृषि, कपड़े धोने जैसे विभिन्न उद्देश्यों के लिए खोदा गया था। प्रत्येक तालाब को कार्यक्षमता, स्थलाकृति और मांग के आधार पर डिजाइन किया गया था। इन तालाबों की खोदी हुई मिट्टी के ऊपर हैमलेट स्थापित किए गए थे।

जैकवेल

ग्रेट निकोबार द्वीप समूह की शोम्पेन जनजाति ऊबड़-खाबड़ स्थलाकृति वाले क्षेत्र में रहती है जहां पर वह पानी के संचय का पूरा उपयोग करते हैं। इस प्रणाली में, द्वीप के निचले क्षेत्र को जैकवेल (कठोर लकड़ी के लॉग से बने बांधों से घिरे गड्ढों) से ढक दिया जाता है। इस प्रकार बने गड्ढों में पानी इकट्ठा होता था। वे अपनी जल संचयन प्रणालियों में विभाजित बांसों का व्यापक उपयोग करते हैं। बांस की एक पूरी लंबाई को अनुदैर्ध्य रूप से काटा जाता है और एक कोमल ढलान के साथ रखा जाता है जिसका निचला सिरा एक उथले गड्ढे में जाता है। ये वर्षा जल के लिए नाली के रूप में काम करते हैं जिसे जैकवेल नामक गड्ढों में बूंद-बूंद करके एकत्र किया जाता है। इन विभाजित बाँसों को पेड़ों के नीचे रखा जाता है ताकि पत्तियों से निकलने वाले पानी को इकट्ठा किया जा सके। बड़े जैकवेल अधिक बांस से जुड़े होते हैं ताकि एक जैकवेल से अतिप्रवाह दूसरे जैकवेल की ओर जाता है, जो अंततः सबसे बड़े जैकवेल की ओर जाता है।

जल जन जोडो अभियान

नजा हॉस्पिटल की दूसरी वाली गली, शिवाजी नगर, झांसी- 284001

Email- jaljanjodoabhiyan@gmail.com
Website- www.jaljanjodoabhiyan.org
Phone- 0510-2321051, 05162254910

welt hunger hilfe
For a world without hunger

german cooperation
DEUTSCHE ZUSAMMENARBEIT

VIVA CON AGUA
SANKT PAULI

Facilitate Empowering Process
PARMARTH